मेरे मित्र का, [illegible] मेरे [illegible] [illegible] [illegible] का मूल हिन्दी में पद्य अनुवाद था कि मैं 'मिलन' और 'एडिट' के पश्चात् [illegible] एक बार और लिख दूँ। मैं भी किसी अच्छे सुयोग की प्रतीक्षा कर रहा था। तदनन्तर, सन् १९५५ के दिसम्बर में पंडितजी के साथ कश्मीर-यात्रा का सुअवसर मुझे मिल ही गया। पंडितजी का आग्रह तो पहले से ही रहा था, कश्मीर में मेरे लिए अनुकूल परिस्थिति [illegible] है भी अनुरोध किया कि वहीं कुछ लिखकर अपनी कश्मीर-यात्रा को चिरस्मरणीय बना डालें। इसी [illegible] दिन [illegible] ने [illegible] 'मनन' प्रारम्भ किया था।

[illegible]

था, उसे पूर्ण रूप से देख देने में मैं सफल नहीं हुआ हूँ। और बिना काश्मीर गये उसकी सरसता पाठकों की समझ में भी अच्छी तरह नहीं आ सकेगी। तौभी स्मृति और कल्पना का आनन्द तो उठाया ही जा सकता है।

मैं कवि नहीं। कवि होता तो मैं सचमुच बहुत सुखी होता। पर सत्कवियों का सेवक और सुकविता का अनुरागी अवश्य हूँ। आजकल प्रसाद, हरिऔध और गुप्त जैसे अमृत-निर्झरों के होते हुये मैं जो अपनी तुकबन्दियों का यह भार हिन्दी-कविता के प्रेमियों के सिर पर रखने चला हूँ, यह मेरी धृष्टता है। पर मैंने स्वजनों का अनुरोध पालने के लिये ही इसे लिखा है। अतएव सुकवि और साहित्य-रसिक सहृदयजन इस धृष्टता के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

ईश्वर से विनय है कि मेरा यह स्वप्न कभी सत्य हो।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग — रामनरेश त्रिपाठी

होली, १९८५

स्वप्न

पहला सर्ग

[१]

प्रचुर इन्दु मौक्तिक इन्दीवर
पवि प्रवाल के हर्ष तेज सुख।
विधि की रचना-चारु कलाएँ
बाल-बुद्धि-मद जग के सन्मुख॥
मन्द-मन्द मारुत से क्रीड़ित
पुष्पित सुरभित मधुप-निषेवित।
मंजु मालती-लता-भवन में
था वसंत का हृदय तरंगित॥

[४]

स्नेह-निशा में स्वप्निल-तारा
निस्पन्द सी पूनम शशि पर।
लिए रत्न होते हैं इस नभ में
जग उठ पड़ते हैं सुकुमार।
वैसे ही वैसे अम्बर से
देख उदित कोटि निकट मनोहर* ।
हृदय देख की मृदु प्रथा हैं
वह क्या है सुरपुर में संभव!

[५]

किन्तु उर्मि हम यह निर्धन की
मुद्रित अश्रुओं से उर टकटक।
हँसे हीन कुसुमों से हम
पुष्प कनक सरोज सुनीत।
देख स्वप्न जिसे रहा है
लौटे में हिम-निशा मन्थर।
सम्भव है मनुज स्वर्गिक पर
इस है मन मृदु मनोहर।

* [illegible]

[६]

चारु चन्द्रिका से आलोकित
विमलोदक सरसी के तट पर।
सौर-गन्ध से शिथिल पवन में
कोकिल का आलाप श्रवण कर॥
और सरक आती समीप है
प्रमदा करती हुई प्रतिध्वनि।
हृदय द्रवित होता है सुनकर
शशि-कर छूकर यथा चन्द्रमणि॥

[७]

किन्तु उसी क्षण भूख प्यास से
विकल वस्त्र-वञ्चित अनाथ-गण।
'हमें किसी की छाँह चाहिये'
कहते सुनते हुये अश्रुकण॥
आजाते हैं हृदय-द्वार पर
मैं पुकार उठता हूँ तत्क्षण।
हाय! मुझे धिक् है जो इनका
कर न सका मैं कष्ट-निवारण॥

[८]

मुझे ध्यान में निरत देखकर
यह गुलाब का फूल तोड़कर।
मुँह पर मार खिलखिला उठती
मैं तत्काल भुजाओं में भर॥
बार-बार चुम्बन करता हूँ
उससे जो लालिमा उमड़कर।
निकल कपोलों पर आती है
क्या है वैसी उषा मनोहर?

[९]

किन्तु उसी क्षण वे दुखिया-गण
जिनके कुम्हलाये अधरों पर।
हास्य किसी दिन खेल न पाया
अथवा जिनके गिरे-पड़े घर॥
तेल बिना दीपक-दर्शन से
वञ्चित रहे एक जीवन भर।
अपना हृदय दिखाकर मेरा
ले जाते हैं हर्ष छीनकर॥

[१०]

मेरे कंधे को कपोल से
दाब विमल दर्पण के सम्मुख।
घंटों प्रेम-भरी आँखों से
देखा करती है मेरा मुख॥
चश्मे के सन्निकट अकेले
मैं आँखों में उसकी वह छवि।
देखा करता हूँ, इस सुख का
वर्णन क्या कर सकता है कवि!

[११]

एक-एक कण जिसका होगा
वट-सम बढ़े व्याज पर अर्पण।
वैसी अन्न-राशि की सन्निधि
प्रमुदित हैं ऋण-ग्रस्त कृषक-गण॥
अद्भुत है उनके जीवन में
यह अनुराग-विराग-विमिश्रण।
देख ध्यान में हो आता हूँ
चकित विमोहित व्यथित उसी क्षण॥

[१२]

उमड़-घुमड़ कर जब घमंड से
उठता है सावन में जलधर।
हम पुष्पित कदम्ब के नीचे
झूला करते हैं प्रतिवासर॥
तड़ित-प्रभा या घन-गर्जन से
भय या प्रेमोद्रेक प्राप्त कर।
वह भुजबन्धन कस लेती है
यह अनुभव है परम मनोहर॥

[१३]

किन्तु उसी क्षण वह गर्वीली
अति विषादमय जिसके मुँह पर।
घुले हुये अन्तर की भीषण
चिन्ता के हैं घिरे वारिधर॥
जिसका नहीं सहारा कोई
आजाती है मन के भीतर।
मेरा हर्ष चला जाता है
एक आह के साथ निकलकर॥

[१६]

कभी छोड़ सुख-स्वप्न-मोहिता
शयिता दयिता को शय्या पर।
कुन्द-लता के निकट खड़े हो
उसके करके याद मनोहर—
भृकुटि-विलास, सप्रेम विलोकन,
रसमय वचन, सदा विहसित मुख।
हो जाता हूँ हर्ष-विमोहित
इससे बढ़ क्या है जग में सुख?

[१७]

किन्तु उसी क्षण यह उठता है
कर समाज-सेवा-व्रत-धारण।
मैंने किया जगत में इतने
आर्त्तजनों का कष्ट-निवारण॥
इतनों के तमसावृत मन में
मैंने किया ज्ञान-अरुणोदय।
सोचेगा क्या कभी? अहो! यह
होगा इस कुल का चन्द्रोदय?

[१८]

आता हूँ मैं जल-विहार को
तरणी में तरुणी को लेकर।
मैं खेता हूँ वह गाती है
बैठ सामने मनोमुग्धकर॥
लहरा उठता है भूतल पर
विस्तृत यह सुखमा का सागर।
लय हो जाता हूँ मैं उसकी
लय में विश्व-विलास भूलकर॥

[१९]

किन्तु उसी क्षण जग-अरण्य में
जो अज्ञान-तिमिर के कारण।
ज्ञान-ज्योति के लिये विकल हैं
ऐसे अगणित नर-नारी-गण॥
फिरने लगते हैं आँखों में
मैं न हुआ क्यों मार्ग-प्रदर्शक?
इस चिंता-वश तब लगता है
मुझको अपना जन्म निरर्थक॥

[२०]

खेल रही हैं जिन पर जल की
बूँदें मुक्ता सी द्युति धरकर।
ऐसे पद्म-पत्र से पुलकित
विमल सरोवर में नौका पर॥
कहते हुये पद्म से सुन्दर
ललना के हैं कर मुख पद।
उसको रोमाञ्चित करने से
बढ़कर और कहाँ सुख की हद!

[२१]

एक बूँद जल घन से गिरकर
सरिता के प्रवाह में पड़कर।
'जाता हूँ मैं फिर न मिलूँगा'
यह पुकारता हुआ निरन्तर॥
चला आ रहा है आगे से
कैसा है यह दृश्य भयावह।
न अस्थिर जग में क्या मेरे
लिये

[२२]

लंबे सीधे सघन इकट्ठे
विविध विटप अवली से शोभित।
चिड़ियों की चहचह से जाग्रत
झरनों से दिनरात निनादित॥
पर्वत की उपत्यका में है
कितना सुख! कितना आकर्षण!
शान्ति स्वस्थता बाँट रहा है
सतत जहाँ का एक-एक क्षण॥

[२३]

यहीं कहीं दूर्वा-दल-शोभित
कोमल समतल विशद धरा पर।
कस्तूरी मृग ने चर-चरकर
जिसको है कर दिया बराबर॥
बैठ प्रिया की मधुर गिरा में
उसके अन्तस्तल का सुन्दर।
चित्र देखकर मैं करता हूँ
उस पर निज सर्वस्व निछावर॥

[२८]

किन्तु उसी हास्य पर उनका जो
स्वाभिमानमय प्रभुत्व संयत।
अत्याचार गरल बरती है
लिए विवेक प्रतिकार सुलभ।
आ जाती है मन में आगे
पर आता है मन मलीन कर।
हाय! मुझे धिक् है जो स्वर्गी
स्वर्णिमता में समय नहीं हर।

[२९]

पर्वत-शिखरों का हिम गलकर
उतर उतर नालों में झरकर।
ऐसे वहे दौड़ते उन्मत्त
निर्झरनदियों से सागर।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर
[illegible] [illegible]

[२६]

मानो जलदों के शिशुगण, दल
बाँध खेलते हुये परस्पर।
अति उतावलेपन से चलकर
गोल पत्थरों पर गिर-गिर कर॥
उठते करते नृत्य विहँसते
तथा मनाते हुये महोत्सव।
सागर से मिलने जाते हैं
पथ में करते हुये महारव॥

[२७]

इनका बाल-विनोद देखते
हुये किसी तीरस्थ शिला पर।
सतत सुगंधित देवदारु की
छाया में सानन्द बैठकर॥
सिर धर हरि के पद-पद्मों पर
करके जीवन-सुमन समर्पण।
बना नहीं सकता क्या कोई
अपने को आनंद-निकेतन?

[३०]

जीवन भर अवलोकन करना
कुवलय-दल-नयनी का शशिमुख।
छूना उसका मृदुल कलेवर
मन में अनुभव करना रति-सुख॥
सुनना वचन, सूँघना मुख का
पवन मानकर सरसिज सौरभ।
इसीलिये क्या मिला हुआ है
यह मानव-शरीर सुर-दुर्लभ?

[३१]

मैं हूँ, यह एकान्त अगह है,
जाग्रत नहीं एक भी है रव।
दृग मूँदे बैठा हूँ मानो
मेरे लिये सो रहा है भव॥
सुनी हुई पहले की उसकी
मधुर कंठ-ध्वनि श्रवण-सुखद अति।
गूँज रही है मन में अब भी
छूट नहीं सकती है संगति॥

[[illegible]]

[illegible]
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ?

[[illegible]]

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ?

• [illegible]

[३४]

दुख से दग्ध ताप से पीड़ित
चिन्ता से मूर्च्छित मन से हरा।
श्रम से शिथिल मृत्यु से शंकित
विश्रम-वश कर पान विषय-विष॥
जग-प्रपंच की घोर दुपहरी
में रे पथिक प्यास से विह्वल!
भक्ति-नदी में क्यों न नहाकर
कर लेता है जीवन-शीतल॥

[३५]

इसी तरह की अमित कल्पना
के प्रवाह में मैं निशिवासर।
बहता रहता हूँ विमोह-वश
नहीं पहुँचता कहीं तीर पर॥
रात दिवस की बूँदों-द्वारा
तन-घट से परिमित यौवन-जल।
है निकला जा रहा निरंतर
यह रुक सकता नहीं एक पल॥

[२६]

भोग नहीं सकता हूँ गृह-सुख
मेट नहीं सकता हूँ पर-दुख।
अकर्मण्यता से डरता हूँ
जाता हूँ जब हरि के सम्मुख॥
जीवन का उपयोग न निश्चित
कर पाया दुविधा-वश अबतक।
यौवन विफल जा रहा है यह
जैसे शून्य-सदन में दीपक॥

[२७]

सुनता हूँ यह मनुज-देह है
इस रचना में अंतिम अवसर।
सेवा करके व्यथित विश्व की
मैं तर सकता हूँ भवसागर॥
र जो विविध वासनायें हैं
जग में जो हैं ललित प्रलोभन।
से जग रचनेवाले का
है क्या कोई भिन्न प्रयोजन!

[३८]

मन कहता है, इस भूतल पर
सकल सुखों की नारी है निधि।
इस संसृति के संचालन को
नारी रचकर धन्य हुआ विधि॥
किन्तु यहीं कोई कहता है
नारी है इस जग का बन्धन।
जीव ब्रह्म के बीच आवरण
विरचा है विधि ने नारी-तन॥

[३९]

भोग रहा हूँ प्राण-दण्ड मैं
चित्त हो रहा है अति चंचल।
है यह मेरे पूर्व जन्म के
किसी विचित्र पाप का प्रतिफल॥
मुझ को शिक्षा मिली न होती
क्यों होता मनिमा का अभिनय।
कहीं न होती परिधि ज्ञान की
जग से हुआ न होता परिचय॥

दूसरा सर्ग

[१]

अतिशय [illegible] [illegible] [illegible] उज्ज्वल
निर्झर-सरिता के तट-पथ पर।
पुलक वसंत [illegible]
[illegible] न अभी [illegible] बन्द द्वार।
विचरण में था निरत एक दिन
मन्द-मन्द [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] सुमन सौरभ।

[४]

घन में किस प्रियतम से चपला
करती है विनोद हँस-हँसकर!
किसके लिये उषा उठती है
प्रतिदिन कर शृङ्गार मनोहर?
मञ्जु मोतियों से प्रभात में
तृण का मरकत सा सुन्दर कर।
मरकर कौन स्वच्छ करता है
जिसके स्वागत को प्रतिवासर?

[५]

प्रातःकाल समीर कहाँ से
उपवन में चुपचाप पहुँचकर।
क्या सँदेशा सुना जाता है
घूम-घूम प्रत्येक द्वार पर?
फूलों के आनन अनुराग से
खुल पड़ते हैं जिसे श्रवण कर।
सपने नहीं हँस[illegible] है

[६]

मारुत जिसके पास राजकर
फूलों से परिमल का लेकर।
जाता है प्रति दिवस; कहां वह
करता है निवास राजेश्वर?
किसके गान-यंत्र हैं पक्षी
नभ, निकुञ्ज, सर में, पर्वत पर।
मधुर गीत गाते रहते हैं
इधर-उधर विचरण कर दिन भर॥

[७]

मैदानों की ओर घाटियों
के पथ से अविराम चपल-गति।
पवन घनों को हांक रहा है
पा करके किस प्रभु की अनुमति॥
ढके हुये हैं गिरि-शिखरों को
प्रचुर तुहिन पय-फेन-राशि-सम।
शैल देख खिलखिला रहा है
मानो कोई दृश्य मनोरम॥

[१०]

ये अति सघन सुपल्लव-शोभित
तरुवर शीतल छाँह बिछाकर।
सद्गृहस्थ-सम अतिथि के लिये
रहते हैं प्रस्तुत निशिवासर॥
खेतों में वन में प्रान्तर में
इतने लाल फूल हैं पुष्पित।
नार* लगाकर के वन-वन में
मानो है अनार आनन्दित॥

[११]

इन्द्र-धनुष खेला करता है
झरनों से हिलमिलकर दिन भर।
तृप्त नहीं होते हैं दृग यह
दृश्य देख अनिमेष अवनि पर॥
होता है इस नील झील में
श्यामा का आगमन सुखद अति।
जलक्रीड़ा करते हैं तारे
लहरें लेता है रजनीपति॥

* नार अग्नि काश्मीर में आग के लिये नार शब्द ही प्रचलित है

[१४]

इस विशाल तरुवर चिनार* की
अति शीतल छाया सुखदायक।
चरण चूमने को आतुर सी
पहुँची है गिरि की काया तक॥
हिम-शृंगों को छोड़ रही हैं
दिनकर की किरणें क्षण-क्षण पर।
तिरती हैं वे घन-नौका पर
नभ-सागर में विविध रूप धर॥

[१५]

मुदित सहस्र-रश्मि ने पकड़ा
चिर-सुहागिनी संध्या का कर।
लौट रहा है मानो चेतन
अस्त अंशुधर को पहुँचाकर॥
पक्षी के अनुराग-डोर से
आकर्षित हो खग-दंपति-वृन्द।
कूजत हैं नीड़-दिशा में
विविध रूप-ध्वनि-रंग-छन्द-मय।

*कश्मीर का मुख्य वृक्ष

[२०]

हा ! यह फूल किसी दिन अपनी
अनुपम सुन्दरता से गर्वित।
आया था जग में उमंग से
किसी वासना से आकर्षित।
पर देखा क्या ! क्षणभंगुर सुख
आशा और मृत्यु का संगर।
मुरझ गया होकर हताश अति
सौरभ का निःश्वास छोड़कर।

[२१]

जग क्या है ? किसलिये बना है ?
क्यों है यह इतना आकर्षक !
कब से हूँ सचेत पर फिर भी
इसका खुला रहस्य न अबतक॥
मैं जिसके निर्मल प्रकाश में
करता हूँ दिनरात अतिक्रम।
ज्योति-मूल वह कहाँ प्रकट है ?
बाहर है किसका छाया-भ्रम ?

स्वप्न

पहला सर्ग

[१]

मुकुर इन्दु कौशिक इन्दीवर
रवि रत्नाकर हैं हर्ष तेज सुन्दर।
विधि की रचना-चतुर सफलता के
हास-वृद्धि-मय जग के सम्मुख॥
मन्द-मन्द मारुत से क्रीड़ित
पुष्पित सुरभित मधुप-निषेवित।
मंजु मालती-लता-भवन में
था करता वह हृदय तरंगित।

दूसरा सर्ग

[१]

अभिनव चाँदी रजत सम उज्ज्वल
निर्झर-जलधारा के तट-पथ
सुन्दर बसंत [illegible]
[illegible] के आगे [illegible]
विश्राम मैं था [illegible] दिन
मन्द-मन्द पग
मानो द्रुम-दल-कम्पित [illegible]
[illegible]

[२]

सोच रहा था—भूतल पर यह
किसकी प्रेम-कथा है चित्रित ?
अम्बर के उर में किस कवि के
हैं गंभीर भाव पल्लवित ?
किसकी सुख-निद्रा का मधुमय
स्वप्न-खण्ड है विशद विश्व यह !
जग कितना सुन्दर लगता है
ललित खिलौनों का सा संग्रह !

[३]

बार-बार अङ्कित करता है
ऋतुओं में सविता किसकी छवि !
मोहित होता है मन ही मन
देख-देख किसकी क्रीड़ा कवि !
है यह कौन रूप का आकर
जिसके मुख की कान्ति मनोहर !
देखा करती हैं सागर की
मन्द तरंगें इधर-उधर कर !

[१०]

ये अति सघन सुपल्लव-शोभित
तरुवर शीतल छाँह बिछाकर।
सद्‌गृहस्थ-सम अतिथि के लिये
रहते हैं प्रस्तुत निशिवासर॥
खेतों में वन में प्रान्तर में
इतने लाल फूल हैं पुष्पित।
नार* लगाकर के वन-वन में
मानो है अनार आनन्दित॥

[११]

इन्द्र-धनुष खेला करता है
झरनों से हिलमिलकर दिन भर।
तृप्त नहीं होते हैं दृग यह
दृश्य देख अनिमेष अवनि पर॥
होता है इस नील झील में
श्यामा का आगमन सुखद अति।
जलक्रीड़ा करते हैं तारे
लहरें लेता है रजनीपति॥

*नार-अग्नि काश्मीर में आग के लिये 'नार' शब्द ही प्रचलित है

[१८]

यहाँ नहीं है राग-द्वेष से
हृदय तरंगित होने का भय।
यहाँ कपट-व्यवहार नहीं है
और नहीं जन-जन पर संशय॥
यहाँ नहीं मन में जगती है
प्रतिहिंसा की वृत्ति भयावह।
केवल है सौन्दर्य शान्ति सुख
कैसी है रमणीय जगह यह!

[१९]

जग को आँखों से ओझलकर
बरबस मेरी दृष्टि उठाकर।
झिलमिल करते हुये गगन में
तारों के पथ पर पहुँचाकर॥
करता है संकेत देखने
को किसका सौन्दर्य मनोरम?
आकर के चुपचाप कहीं से
यह संध्या का तम, अति प्रिय तम॥

[२३]

विविध प्रकारों से अविनाशी
जग के विविध कलेवर विस्तृत कर।
[illegible] मानव अविनश्वर सुखों को
रहता है निश्चिन्त धरा पर॥
पर आने वाली है उसकी
[illegible] [illegible] [illegible]।
होती है किसके विनाश का
कारण यह निश्चित [illegible] [illegible]!

[२४]

मधुर कल्पनायें जब मन में
खिलते आती हैं रह-रह कर।
या सुख दुख की घटनाओं की
स्मृतियाँ आती हैं क्षण-क्षण पर
या मनुष्य को

है यह कौन?

[२६]

हर्ष-विषादों के उठते हैं
जो अगणित उच्छ्वास यहाँ पर।
उनका कौन स्वाद लेता है ?
रहता है वह रसिक कहाँ पर ?
जग क्या है ! किसलिये बना है ?
क्यों है यह इतना आकर्षक ?
कोई इसका अभिनेता है ?
मैं हूँ कौन ? हृदय ? या दर्शक ?

[२७]

कभी-कभी इस व्यथित हृदय में
उठता है तूफान अचानक।
मैं तरु से टूटे पत्ते की
भाँति न जाने कहाँ-कहाँ तक॥
पता नहीं किसकी तलाश में
उड़ता रहता हूँ प्रवाह पर।
यह तूफान चला जाता है
मुझे 'आह' के साथ छोड़कर॥

[२८]

मैं तो नहीं, किन्तु है मेरा
हृदय किसी प्रियतम से परिचित।
जिसके प्रेम-पत्र आते हैं
प्रायः सुन्दर-स्वप्नाद्-सन्निहित ॥
जी में आता है इस जग में
इन पत्रों में क्यों न प्रकाशक।
देखूँ तो उस पार कहाँ पर
रहता है इसका अधिनायक ॥

[२९]

जिस [illegible] पर
[illegible] आत्म-[illegible] का [illegible]।
[illegible] अधिकारी [illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]।

[२०]

करुणामय कर कृपा खोल दो
मेरे निज विवेक-विलोचन ।
मेरे जीवन में सुकृतियों का
हर भर दो नवकीर्ति-विलोचन ॥
आर्यों के आदर्श-मार्ग पर
मेरा हो प्रबल अवलम्बित ।
मेरे परिदर्शन में मेरा
अन्तर्जीवन हो प्रतिबिम्बित ॥

[३१]

मुझको निज मन्दिर में हे हरि !
बना रहे विश्वास अचंचल ।
मेरे अन्तर्मन में हे प्रभु !
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[३२]

यों चिन्ता करते-करते यह
सुन्दर सरिता-तीर-अवस्थित
निज कुटीर पर गृह-देवी के
सम्मुख आकर हुआ उपस्थित।
जिसके नेत्रों में दर्शित था
सच्चरित्र उन्नत पवित्र मन।
जिसकी भौंहों में लक्षित था
सरल प्रकृति-संभव भोलापन॥

[३३]

लगते थे जिसके कपोल युग
रक्त-प्रभा से वैसे सुन्दर।
जैसे दर्पण में गुलाब के
गुच्छक के प्रतिबिम्ब मनोहर॥
मोहकती आभा करती थी
जिसकी प्रतिभा को समुज्ज्वलित।
जो मन्दिर की एक नर्तकी
सुन्दर थी अपने न गर्वित॥

[३४]

कल्प सी मृदु, धर्नीत सी
मृदु, कल्पना सी मुख-कुंदन।
शुभ्र उषा सी, दिव्य हास्य सी,
स्वर्ग-सिंधु की लहरि सी मंजुल।
मद छोटी हुई वक्रक
पग पर लहरि द्रिग विन्यास।
सहृदयिनी सखी सुनना ने
हँसकर दिया पुलक का स्वागत।

[३५]

मोहन के उर्वर कुसुमवन
पहले लहरें लक्षी—लाजवन!
क्या फिर आज तुम्हारे मन में
उठा उठा एक सौम्य पुलकन!
हँसी ही हो तुम लज्जा
पर उत्तर दिया है निश्चय!
लिये कल्पना से मृदु पद से
उपहार नहीं सकते हम।

[३६]

तुम में सच्चरित्रता, प्रतिभा,
ज्ञान, योग्यता, धैर्य, पराक्रम।
सेवाभाव सहानुभूति है
अतः नाथ कर प्रकट परिश्रम।
पहले निज घर से सुधार का
तुम क्यों करते नहीं उपक्रम!
केवल मनसा की तरङ्ग में
क्यों खोते हो आयु निरुपम!

[३७]

बैठ रहे होगे तुम कोई
महत्कार्य करने का अवसर।
पर यह अन्वेषण है सोचो
कितना बड़ा आयु का तस्कर।
छोटा ही सत्कार्य क्यों न हो
करने लगो हृदय से सत्वर।
होगा स्वयं उपस्थित आकर
महत्तम करने का अवसर।

[१६]

ढोरों के पीछे चरवाहे
घर की ओर विपिन के पथ पर।
देते हैं सूचना साँझ की
मुरली के मधुमय स्वर में भर॥
विरह-भार से मन मल्लाह-गण
खेते गुणवती नौका लेकर।
कोई गुणवन्ती इनको भी
खींच रही है क्या पल-पल पर?

[१७]

ये अनुराग-भरे वनवीथर
ग्राम-निकट ये शांति-समन्वित।
प्रिय की सुधि सी ये सरिताएँ
ये कानन कान्तार सुगन्धित॥
हरित भूमि के मध्य शिखर गण
पुष्पित श्यामा प्रकृत मनोरम।
कट आहत हैं सुमन देखकर
घर के बाहर सूने दिन रात॥

[१८]

यहाँ नहीं है पाखंड से
हृदय कंपित होने का भय।
यहाँ छल-व्यवहार नहीं है
और नहीं उलझन पर संशय।
यहाँ नहीं मन में उलझी है
कुटिलता की कुटिल नचाहट।
केवल है सौन्दर्य शान्ति सुख
फैली है सम्पूर्ण प्रसार पर!

[१९]

वन को लोगों से लेकर
[illegible] बैठे रहे उधर।
खिलखिल करते हुये कमल में
लगे हैं पद पर पुंकार।
[illegible] है संकेत देते
को हिलता सौन्दर्य मनोरम!
[illegible] है कुञ्जन करते हैं
पद [illegible] [illegible] [illegible]।

[२०]

हा ! यह फूल किसी दिन अपनी
अनुपम सुन्दरता से गर्वित।
आया था जग में उमंग से
किसी कामना से आकर्षित॥
पर देखा क्या ? क्षणभंगुर सुख
आता और मृत्यु का संगर।
मुरझा गया होकर हताश अति
सौरभ का निःश्वास छोड़कर॥

[२१]

जग क्या है ? किसलिये बना है ?
क्यों है यह इतना आकर्षक ?
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[२४]

विविध उपायों से अभिमानी
जग के विविध क्लेश विस्मृत कर।
शाश्वत समझ अनित्य सुखों को
रहता है निश्चिन्त धरा पर॥
पर करने लगती है उसको
उत्पीड़ित क्षण-भंगुरता जब।
होती है विस्मय विनोद का
कारण यह विचित्र क्रीड़ा तब॥

[२५]

मधुर कल्पनायें जब मन में
घिरने लगती हैं उठ-उठ कर।
या सुख दुख की घटनाओं की
स्मृतियाँ जगती हैं क्षण-क्षण पर॥
या मनुष्य को लगता है जब
सपना सा यह [illegible] जग।
है यह कौन ' जिसे लगता है
[illegible] यह [illegible] अपना सब।

[३२]

यों चिन्ता करते-करते वह
सुन्दर सरिता-तीर-अवस्थित।
निज कुटीर पर गृह-देवी के
सम्मुख आकर हुआ उपस्थित॥
जिसके नेत्रों में दर्शित था
सच्चरित्र उज्वल पवित्र मन।
जिसकी भौंहों में लक्षित था
सरल प्रकृति-संभव भोलापन॥

[३३]

लगते थे जिसके कपोल युग
रक्त-प्रभा से ऐसे सुन्दर।
जैसे दर्पण में गुलाब के
गुच्छक के प्रतिबिम्ब मनोहर॥
नोकयती नासा करती थी
जिसकी प्रतिमा को सुप्रमाणित।
जो सत्कवि की एक पंक्ति सी
सुन्दर थी सदर्थ से प्राणित॥

[३६]

तुम में सच्चरित्रता, प्रतिभा,
ज्ञान, योग्यता, धैर्य, पराक्रम।
सेवाभाव सहानुभूति है
अतः नाथ कर प्रकट परिश्रम॥
पहले निज घर से सुधार का
तुम क्यों करते नहीं उपक्रम!
केवल मनसा की तरङ्ग में
क्यों खोते हो आयु निरुद्यम!

[३७]

ढूँढ़ रहे होगे तुम कोई
महत्कार्य करने का अवसर।
पर यह अन्वेषण है सोचो
कितना बड़ा आयु का तस्कर॥
छोटा ही सत्कर्म क्यों न हो
करने लगो हृदय से लगकर।
होगा स्वयं उपस्थित आकर
महत्कर्म करने का अवसर॥

[३८]

कहती है यह प्रकृति सदा तुम
प्रेम करो केवल अपने पर।
गृह-शिक्षा कहती है—अपने
कुल पर रक्खो प्रीति शक्ति भर॥
जनता कहती है—स्वदेश पर
कर दो निज सर्वस्व निछावर।
और धर्म कहता है—रक्खो
जीवमात्र पर प्रेम निरन्तर॥

[३९]

एक साथ तुम कर न सकोगे
सबके अनुरोधों का पालन।
कर्म अनंत, आयु है निश्चित,
उस पर भी कल्पना-ग्रसित मन॥
मनुज मनोज्ञ कल्पना-द्वारा
चाहे कर ले निज प्रसन्न मन।
उनसे न शान्ति पाते हैं
दुर्जय कष्टों से जर्जर जन॥

[४०]

गृह का सुख, नीरुज तन का सुख,
छोड़ मुकुलित यौवन का सुख।
मन की अमित तरंगों में तुम
खोते हो इस जीवन का सुख॥
बातों ही बातों में तन से
घन की छाया-सम यह यौवन।
निकल जायगा तीर की तरह
पछताओगे तब मन ही मन॥

[४१]

सेवा है महिमा मनुष्य की
न कि अति उच्च विचार द्रव्य-बल।
मूल हेतु रवि के गौरव का
है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल॥
सुमना की मार्मिक बातों से
हुआ बसंत विशेष प्रभावित।
किसी एक निश्चय पर है वह
तब से होने लगा प्रमाणित॥

[२]

पारस्परिक सहानुभूतिमय
सकल मनुज नीरुज निरुपद्रव।
हाट-बाट घर-घर में प्रतिदिन
करते थे संगीत महोत्सव।
युवक युवतियों के कलोल से
गूँजा रहता था घर उपवन।
नित्य नवल कामना-निरत थे
विविध विलास-युक्त उनके मन॥

[३]

यह सुख देख द्वेष-वश अथवा
धन-लिप्सा-वश बल-संचय कर।
एक शत्रु चतुरंग चमू ले
औचक आ पहुँचा सीमा पर॥
देशाधिप ने तुमुल युद्ध कर
मारा बहु संख्यक के सैनिक
पर उसका दुर्जय अनी से
हार गया नृप नहीं सका टिक॥

[६]

वे थे नीति-धर्म के रक्षक
जगज्जयी पुरुषों के वंशज।
पृथ्वी भर के नृप होते थे
धन्य प्राप्त कर जिनकी पद-रज॥
सत्य शौर्य विश्वास न्याय के
एकमात्र आधार धरा पर।
वे ही थे; उनका जीवन था
जग के निविड़ विपिन में दिनकर॥

[७]

वे न जानते थे भूतल पर
जीवित रहना पराधीन बन॥
न्याय और स्वातन्त्र्य जगत में
उनके थे दो ही जीवन-धन॥
सुन नृप की घोषणा शत्रु की
प्रबल शक्ति का पाकर परिचय।
किया उन्होंने शीघ्र शत्रु को
उचित दंड देने का निश्चय॥

[८]

जय के दृढ़ विश्वास-युक्त थे
दीप्तिमान जिनके मुख-मंडल।
पर्वत को भी खंड-खंड कर
रजकण कर देने को चंचल॥
फड़क रहे थे अति प्रचंड भुज-
दंड शत्रु-मर्दन को विह्वल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

[९]

अपने शयनागार बंद कर
दिये नवोढ़ाओं ने तत्क्षण।
बाँध दिये पतियों की कटि में
असि, कलाइयों में रण-कंकण॥
माताओं ने विजय-तिलक कर
छिड़के थे जिन पर पवित्र जल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

[१०]

अरि-मर्दन के मनोभाव थे
जिनकी मुख-आकृति में लक्षित।
जिनके हृदय पूर्व पुरुषों की
वीर-कथाओं से थे रक्षित॥
जिनमें शारीरिक बल से था
कहीं अधिक उद्दाम मनोबल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

[११]

जिनकी नस-नस में विद्युत् थी
आँखों में था क्रोध प्रज्वलित।
छाती में उत्साह भरा था
वाणी में था प्राण प्रवाहित॥
मातृभूमि के लिये हृदय में
जिनके भरी भक्ति थी अविरल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल॥

[१२]

माँ के चरण-युग की मेरे
[illegible] [illegible] इस में है कुल!
जी के [illegible]-सींचना घर की
आर्यपुत्र! तुम दिव्यदर्शी सुत॥
इन दलों में गूँज रहे हैं
जिनके [illegible] और [illegible]।
मास-मास के [illegible] कर
ऐसे सुख पाते रहे के [illegible]॥

[१३]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] के [illegible] [illegible]।
[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] की
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

[१४]

बहनें कहती थीं—हे भाई!
वैरी का अभिमान चूर्णकर।
विजयी योद्धा के बानक में
इसी राह होकर जाना घर॥
हम गायेंगी गीत विजय के
फूल और लाजा बरसाकर।
बहनों को आनंदित करना
हर्ष हमारा सुना सुनाकर॥

[१५]

बहुयें भूख प्यास बिसराकर
पथ पर निर्निमेष दृग देकर।
देख सैनिकों के सजधज निज
पतियों की छवि दृग में लेकर॥
पथ की ओर खोल वातायन
बार-बार चुपचाप आह भर।
किसी कल्पना में बेसुध सी
वहीं खड़ी रहती थीं दिनभर॥

[१६]

युद्ध जीतकर वीर वेष में
आयेंगे मेरे प्राणेश्वर।
पहनाऊँगी यह जयमाला
इसी भावना को उर में धर॥
प्रातःकाल नित्य उठकर के
उपवन से नव कुसुम चयन कर।
हार गूँथकर थे रखती थीं
प्रेम-वारि से पूर्ण नयन कर॥

[१७]

गाँव-गाँव में चौराहों पर
प्रतिदिन संध्या को नारी-नर।
एकत्रित हो युद्ध-भूमि के
अति रोचक वृत्तान्त श्रवणकर॥
हो जाते थे हर्ष-विमोहित
रोमाञ्चित गर्वित आनन्दित।
कभी-कभी चिंतित आन्दोलित
उत्तेजित विक्षोभ-विस्पन्दित॥

[३२]

तुम हो वीर पिता माता के
वीर पुत्र मेरे जीवन-धन।
तुमसे आशायें कितनी हैं
जन्मभूमि को हे अरिमर्दन!
तुम्हें ज्ञात है वैसा संकट
है स्वदेश पर हे प्राणेश्वर!
शोभा नहीं तुम्हें देता है
घर पर रहना इस अवसर पर॥

[३३]

शस्त्र ग्रहणकर रण में जाकर
विजय प्राप्तकर वीर अरिन्दम!
मनोकामना इस दासी की
पूर्ण करो प्राणाधिक प्रियतम!
बातें सुन उसके विधु-मुख पर
हाथ फेरकर चारु चिबुक धर।
सुमना से वसंत यह बोला
अल्पक अधर कपोल चूमकर॥

[३४]

प्राण-वल्लभे ! प्रिये ! सुवदने !
इन्दीवर-आयत-दल-लोचनि !
प्रेम-तरंगिणि ! चित्त-विहारिणि !
हे सुभगे ! भव-ताप-विमोचनि !
तेरी मकरध्वज-धन्वा सी
वक्र-भृकुटियों के इंगित पर।
मेरी सब गति विधि निर्भर है
जैसे कीश मदारी के कर।

[३५]

सुन्दरि ! तेरे हाव भाव के
वशीकरण से हूँ मैं मोहित।
प्राण निकलने लग जाते हैं
क्षणभर भी तू हुई तिरोहित।
तेरे बिना नहीं जी सकता
तू है मेरे जीवन की मणि।
मेरा निधन-वृत्त सुनने को
क्यों तू आतुर है मृगलोचनि!

[३६]

... विशाल पर्वत सा आगे
मेरे यौवन की स्मृति का सुख।
...ती शोभा का रत्नाकर
लहरें मार रहा है सम्मुख॥
...री सुखपाटल की मदिरा
दीपक में उन्मत्त अचेतन।
...फिर सागर का कर सकता हूँ
प्राणेश्वरि ! मेरे उल्लंघन !

[३७]

प्रेम हृदय में है हे प्यारी!
तेरी चोटी चिलमन का हार।
बन्धन बनी है गुलाब के
बाँहें की लतिका मनोहर।
मेरे हृदय-गर्भ में तेरा
छल छलता है नव निर्झर।
मैं सागर, मैं सरिता, [illegible]
[illegible] सकता हूँ [illegible] मैं [illegible]!

[६०]

नारी के कारण से जग में
यदि हो पति अपयश का भाजन ।
तो सचमुच है घोर पाप का
फल-स्वरूप वह नारी का मन ॥
है [illegible] योग्य नारी का
हास्य विलास चपल वह यौवन ।
[illegible] है जिसके प्रभाव से
पुरुष पतित अपकीर्ति-निकेतन ॥

[६१]

निष्कलंक [illegible] [illegible]
[illegible] राह में [illegible] का ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
वह [illegible] के अवलोकन का ।
'[illegible] का [illegible] [illegible] [illegible]'
[illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] ।
[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] से
[illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] ।

[२]

एक एक कोना इस घर का
हार गया मैं खोज खोजकर।
मेरी परम प्रेम की प्रतिमा
कहाँ छिप गई है परमेश्वर!
प्रियम्वदा के बिना आज यह
लगता है घर महा भयंकर।
द्वार नहीं हैं ये अति भीषण
मुँह खोले हैं खड़े निशाचर॥

[३]

आँख मूँद देखा करता हूँ
इस आशा से अति आकम्पित।
दृग खुलते ही उस विनोदिनी
के दर्शन हो जावें अकल्पित॥
[illegible] दीखो द्वार खोलकर
[illegible] होगी मैंने [illegible]।
[illegible] में यह आई
[illegible] कहाँ क्या है परमेश्वर॥

[६]

मेरी स्मृति के राग प्रेममयि !
गूंजते हैं अपार यह क्रंदन।
तुम्हें भूल जाऊँ, तो जग में
मेरा क्या है प्रिय ! प्रयोजन॥
इस प्रकार प्रार्थित [illegible] को
प्रिय [illegible] संबोधन कर।
[illegible]
यह [illegible] निरन्तर॥

[७]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[८]

सुमना ने निज कर कमलों से
जिन तरुओं को सींच सींच कर।
बड़ा किया था, उनके तन से
लिपट लिपट कर प्रेम पुरस्सर॥
मुग्ध वसंत न जाने क्या क्या
सोचा करता था मन ही मन।
प्रेम-रहस्य जान सकते हैं
केवल विरह-व्यथित प्रेमी जन॥

[९]

जिन जिन जगहों पर वसंत ने
सुमना के सन्निकट बैठकर।
सारे जग को भूल प्रेम की
एक मूर्ति मन-मन्दिर में धर॥
हावभाव भ्रू-संचालन से
आँखों में अधरों में हँसकर।
हृदय खोलकर बातें की थीं
वर्द्धन कर अनुराग परस्पर॥

[१०]

जहाँ किये थे मान जहाँ पर
हास जहाँ परिरम्भण चुम्बन।
प्रणय-कलह छिपकर कटाक्ष फिर
क्षमा-याचना प्रेमालिङ्गन ॥
जहाँ हुई थी आँख-मिचौनी
जहाँ हुआ था वेणी-बन्धन।
जहाँ कुसुम-कन्दुक-क्रीड़ा के
साथ हुआ था लोम-प्रहर्षण ॥

[११]

कहकर जहाँ कान में कोई
प्रेम-रहस्य विनोद-विभूषित।
लज्जा-नम्र-मुखी सुमना को
देख हुआ था वह आनंदित ॥
उन उन जगहों पर जा-जाकर
हृदय-व्यथा से विह्वल होकर।
लोट-लोटकर मूर्च्छित रहकर
दिवस बिता देता था रोकर ॥

[१२]

कई दिनों तक इसी भाँति से
विषम वियोग-जनित दुख सहकर।
सुमना से निराशा-सा होकर
मनसा के प्रवाह में बहकर॥
निकल गया घर छोड़ सुपरिचित
वन में चारोंओर घूमकर।
वह अनुभूत सुखों का चित्रण
लगा देखने मानस-पट पर॥

[१३]

एक दिवस इस तरु की सुन्दर
छाया से चित्रित भूतल पर।
थककर या इस प्रेम-पात्र को
सुख देने के लिये दयाकर॥
वह सो गई गोद में मेरी
ढीले कर सब अंग मनोहर।
मैं अतृप्त नेत्रों से उसका
देख रहा था आनन सुन्दर॥

[१४]

किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी
नीरवता से व्याकुल होकर।
अपने अधर रख दिये मैंने
उसके अरुण वर्ण अधरों पर॥
चौंक उठी वह; किन्तु जानकर
मेरी व्याकुलता का कारण।
विद्युत् सी खिलखिला पड़ी वह
हाय! भूलता नहीं एक क्षण॥

[१५]

वर्षा के उत्पन्न जलज से
छोटे छोटे मेघ उतरकर।
जाते थे जब उधर शैल की
रोम-वलि में उन्हें देखकर।
"थके हुवे ये घन के बालक
ठहर पैठ के सोते हैं वन।"
कहकर यह हँसती थी उसका
हँसता था भोलापन अनुपम॥

[१६]

एक दिवस मैंने उपवन में
पुष्पित एक गुलाब देखकर।
बड़े प्रेम से कहा—हे प्रिये !
कैसा है प्रसून यह सुन्दर!
वह अचरज से लगी देखने
निज कपोल मेरे समक्ष कर।
मैं लज्जित हो गया, भूलता
नहीं हाय ! वह हृदय मनोहर॥

[१७]

यह सिर से पद तक अति उज्ज्वल
हिम से आच्छादित है गिरिवर।
इसकी चोटी से हम दोनों
भुज-बन्धन कस आलिंगन कर॥
चुम्बन करते हुये परस्पर
लुढ़का करते थे उतार पर।
उसे स्मरण कर हो जाता है
हृदय विरह-ज्वर से अति कातर॥

[१८]

वह सुधांशु-वदनी निज वपु पर
उज्ज्वल विमल वसन धारण कर।
मेरे साथ घूमने जाकर
जमे हुये अति धवल तुहिन पर॥
हो जाती थी परीहाल-वरा
हिमतल पर अदृश्य किंचित हट।
मैं कनीनिका देख-देख तब
मैं सकता था पहुँच सन्निकट॥

[१९]

मैं करता था जब उसके
सौन्दर्य और गुण का संकीर्तन।
मेरे दृग से लग जाते थे
उसके अर्द्ध-निमीलित लोचन॥
मेरा कंठ-हार बनती थीं
उसकी गोल भुजायें उठकर।
हो जाती थी प्रेम-प्रभा से
उसके मुख की कान्ति मनोहर॥

[२४]

अर्द्ध-निशा में तारागण से
प्रतिबिम्बित अति निर्मल जलमय।
नील झील के कलित कूल पर
मनोव्यथा का लेकर आश्रय॥
नीरवता में अंतस्तल का
मर्म करुण स्वर-लहरी में भर।
प्रेम जगाया करता था वह
विरही विरह-गीत गा गाकर॥

[२५]

करुण-रसाप्लुत विरह-गीत रच
खेतों और वनों में जाकर।
हलवाहों को चरवाहों को
सिखा दिये थे उसने गाकर॥
उसकी विरह-वेदना अगणित
कंठों में हो उठी निनादित।
हृदयों में हो उठा चतुर्दिक
करुणा पारावार तरंगित॥

[२६]

भोज-पत्र पर विरह-व्यथा-मय
अगणित प्रेम-पत्र लिख लिखकर ।
डाल दिये थे उसने गिरि पर
नदियों के तट पर वन-पथ पर ॥
पर सुमना के लिये दूर थे
ये वियोग के हृदय कदम्बक ।
और न विरही की पुकार ही
पहुँच सकी उसके समीप तक ॥

[२७]

कनक, कलभ, कदली, राकापति,
परभृत, ललित, विद्रुम, मधुकर ।
सर, कुन्दन, दाड़िम, गुलाब, शुक,
देख महीधर-शिखर, वारिधर ॥
सुमना के अंगों की बरबस
याद दिला के आकर रोकर ।
रुदन किया करता था वन में
फूलों पर शबनम मिस रोकर ।

[२८]

प्रथम, मेरा हृदय को पाके
था एक ही दिन में आभय।
किन्तु हो गया था वियोग में
प्रथम हिये आगम सुमनमय।
वह मदीनों साथ देती ही
उसकी पूजा नहीं अभिनंदित।
धीरे धीरे मन जिसका हो
वह पूछ होने लगा [illegible]।

[२९]

[illegible] वातावरण प्राप्त कर
[illegible] वाली [illegible] पूजा था।
इसे आज हृदय में प्रथम
[illegible] [illegible] [illegible]।
इस [illegible] की [illegible] पर
[illegible] है [illegible] का [illegible]।
अब वह [illegible] [illegible] का
[illegible] [illegible] [illegible] अनुराग।

[३२]

आया हूँ मैं तुम्हें सुनाने
आज एक सम्वाद शोकमय।
पर-पद-दलित शीघ्र ही होगा
देश तुम्हारा हे शत्रुञ्जय!
धन-बल जन-दल और बुद्धि-बल
करके मुक्तहस्त व्यय भरसक।
कर न सके रिपु को परास्त हम
घोर समरकर एक वर्ष तक॥

[३३]

प्रबल शत्रु ने आधे से भी
अधिक देश कर लिया हस्तगत।
पथ्यदाता की आशङ्का से
हैं हम लोग त्रस्त चिन्तागत॥
चारोंओर देख पड़ते हैं
दृश्य देश में हृदय-विदारक।
दशा हमारी शोचनीय है
खोज रहे हैं हम उद्धारक॥

[२८]

इस चिन्ताघन को भेदन कर
आत्म-तेज रूपी मरीचिधर।
दीप्तिमान हो गया हृदय से
ऊँचा उठकर मुखमण्डल पर॥
निश्चय की दृढ़ता बतलाने
लगे ज्योतिमय अचल विलोचन।
कहने लगा उठाकर अपना
भुज विशाल वह भीति-विमोचन॥

[२९]

करता हूँ स्वीकार निमंत्रण
मैं सहर्ष हे युवक बन्धुवर!
किन्तु एक इच्छा मेरी भी
करनी होगी पूर्ण दयाकर॥
"रहना होगा युद्धस्थल में
तुमको मेरे साथ निरन्तर
हो सदैव मैं साथ रहूँ
तत्पर करूँ युद्ध मैं हँसकर

पाँचवाँ सर्ग

[१]

निर्जन वन के बीच सुमन सम
　　　　तम में दीप निशा-घन में रवि।
मरु में सान्त्वना-वारि, घन-
　　　　विस्मृति में [illegible] [illegible]।
[illegible]
　　　　[illegible]
[illegible]
　　　　[illegible]

[४]

सागर सा गंभीर हृदय हो
गिरि सा ऊँचा हो जिसका मन।
ध्रुव सा जिसका लक्ष्य अटल हो
दिनकर सा हो नियमित जीवन॥
जिसकी आँखों में स्वदेश का
अति उज्ज्वल भविष्य हो चित्रित।
इच्छा में कल्याण बसा हो
चिन्ता में गौरव हो रक्षित॥

[५]

तेज, हास्य, आनन्द, सरलता,
मैत्री, करुणा का भाण्डागार।
हो सदा प्रतिबिम्बित हृदय का
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[८]

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से
जिनके दिव्य देश का मस्तक।
गूँज रही हैं सकल दिशायें
जिनके जयगीतों से अबतक॥
जिनकी महिमा का है अविरल
साक्षी सत्य-रूप हिमगिरिवर।
उतरा करते थे विमानदल
जिसके विस्तृत वक्षस्थल पर॥

[९]

सागर निज छाती पर जिनके
अगणित अर्णव-पोत उठाकर।
पहुँचाया करता था प्रमुदित
भूमण्डल के सकल तटों पर॥
नदियाँ जिनकी यश-धारा सी
बहती हैं अब भी निशि-वासर।
हैरो उनके चरण-चिन्ह भी
पाओगे तुम इनके तट पर॥

[१२]

तुम हो हे प्रिय बंधु! स्वर्ग सी
सुखद सकल विभवों की आकर।
धरा-शिरोमणि मातृभूमि में
धन्य हुये हो जीवन पाकर॥
तुम जिसका जल-अन्न ग्रहणकर
बड़े हुये लेकर जिसका रज।
तन रहते कैसे तज दोगे?
उसको हे वीरों के वंशज!

[१३]

पर-पद-दलित, पर-मुखापेक्षी,
पराधीन, परतंत्र, पराजित।
होकर कहीं आर्य जीते हैं!
पामर, पशु-सम, पतित, पराश्रित॥
तुम्हीं देश के आशा-स्थल हो
तुम्हीं शक्ति सम्पदा तुम्हीं सुख।
जर्जर होकर भी जीवित है
देश तुम्हारा देख देख मुख॥

[१६]

कहीं शान्ति का नाम नहीं है
कहीं नहीं है सुख की संगति।
कहीं न मुँह पर मुस्काहट है
और नहीं पलकों में है गति॥
कोस रही हैं अपनी कोखें
माताएँ अति ही अधीर बन।
हाय! नहीं क्यों जनमा इनसे
कोई बालक शत्रु-निकन्दन॥

[१७]

देख आत्म-बलिदान तुम्हारा
मौन रहा है आज धराधर!
दिग्विजयी वीरों के वंशज!
तुमको! उठो संगठित होकर।
एक स्वर हो उठे तुम्हारा
प्रलयंकर हुङ्कार भयङ्कर।
हाथ [illegible]
[illegible]

[१४]

अतुलित धन, अनुपम कुल-गौरव,
अविरल शान्ति, देव-दुर्लभ सुख।
कुटिल शत्रु ने छीन लिया है
छोड़ दिया है असहनीय दुख॥
सकल दिशायें काँप रही हैं
सहकर अत्याचार भयानक।
घर घर में अनाथ बच्चों का
आर्तनाद है हृदय-विदारक॥

[१५]

वृद्धजनों का विधवाओं का
हाहाकार विलाप श्रवणकर।
फट जाता है वज्र हृदय भी
विगलित हो जाता है पत्थर॥
थोड़े ही अवसर में मैंने
देख लिया है घूम घूमकर।
घर घर में इस समय व्याप्त है
केवल चिन्ता दुख अशान्ति डर॥

[१६]

कहीं शान्ति का नाम नहीं है
कहीं नहीं है सुख की संगति।
कहीं न मुँह पर मुस्काहट है
और नहीं पलकों में है गति॥
कोस रही हैं अपनी आँखें
माताएँ अति ही अधीर बन।
हाय! नहीं क्यों आकर उनके
कोई बालक रघुकुल-नन्दन॥

[१७]

तेरा आत्म-[illegible] सुहाग
मौन पड़ा है आज [illegible]!
हिचकियाँ [illegible] के [illegible]!
[illegible]! [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[२४]

काम क्रोध मद लोभ आदि भी
उचित प्रयोग-कुशल को पाकर।
मिश्रण से अनुकूल गुणों के
हो सकते हैं सुख के आकर॥
दुरुपयोग से सद्गुण कहकर
घोषित सत्य अहिंसादिक व्रत।
हो सकते हैं दुख के कारण
है यह सत्य विज्ञजन-सम्मत॥

[२५]

अतः विवेक-तुला पर रखकर
गुण अवगुण को खूब परख कर।
आवश्यकता देख शक्ति का
सद्व्यय करना है श्रेयस्कर॥
केवल बल-प्रयोग पशुता है
केवल कौशल है कायरपन।
शस्त्र शास्त्र दोनों के बल से
विज्ञ जीतते हैं जीवन-रण॥

[३०]

युवकों की सेना वसंत के
जय से बारम्बार निनादित।
शत्रुहीन करके स्वदेश को
लौट पड़ी आनन्द-विमोदित॥
रहते थे रण में जनता के
कान लगे परिणाम-भयातुर।
विजय-घोष सुन अमित हर्ष से
भर आया उसका विशाल उर॥

[३१]

बहुत दिनों पर मिला देश को
ऐसे अनुपम सुख का अवसर।
स्वागत की अनेक किरणों से
उदित हुआ आनन्द-प्रभाकर॥
ग्रीष्म की प्रथम थी पहली
रात दीप-हीरों से सजकर।
राजा-रङ्कमयी जनता ने
की अर्चित वसंत की सादर॥

[३२]

लौट रहा था राज-नगर को
जिस पथ से दमयन्त आनंदित।
सारा पथ जन-सागर सा था
शशि-दर्शन के लिये तरङ्गित॥
गूँज उठा करता था क्षण के
तुमुल नाद से बार बार नभ।
कहते थे सब लोग भाग्य से
मिलते हैं ऐसे दिन दुर्लभ॥

[[illegible]]

[illegible]
[illegible] सुमन-वृष्टि कर।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[३६]

स्वागत में भी प्रजा-वृन्द के
मुख से जय जयकार श्रवणकर।
वही वाक्य वह दुहराता था
सुमना की स्मृति से आँखें भर॥
केवल साथी युवक जानता
था वसंत का मर्म गूढ़तम।
प्रेम-मुग्ध वह हो जाता था
समझ समझ कर भाव मनोरम॥

[३७]

प्रजा और नृप ने वसंत का
हर्ष-समेत किया अभिनन्दन।
सिंहासन पर उसे बिठाकर
नृप बोला—"हे शत्रु-निकन्दन।
[illegible] धरा पर [illegible] देश पर
[illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible]।
[illegible] हैं [illegible] तुम्हारे
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[३८]

लो यह राज्य प्रजा की थाती
तुम्हें सौंपता हूँ हे प्रियवर!
मुझे तुम्हारी प्रजा कहाने
का गौरव हो प्राप्त निरन्तर॥
राजा का यह त्याग देखकर
प्रजा हो गई हर्ष-विमोहित।
धन्य धन्य ध्वनि से जय जय से
बार बार नभ हुआ निनादित॥

[३९]

इसी समय पद-वन्दन कर के
सुजला सम्मुख हुई उपस्थित।
विस्मित हुआ समस्त सभागृह
देख सामने सुता चिर-वांछित॥
किन्तु सजल यह कर न सका कुछ
वाणी से निज हृत मनोगत।
दृग-बिन्दुओं से आँखों से
आभार किया प्रकट था।

[४०]

सावधान होकर वसन्त फिर
बोला सब को सम्बोधन कर।
जिसने किया कर्म के पथ में
मुझे धर्म-पालन को तत्पर॥
कई बार दुर्दम्य शत्रु के
दल में मेरे प्राण बचाकर।
जिसने मुझे किया है उपकृत
रहकर रण में साथ निरन्तर॥

[४१]

वह मेरा प्रिय बन्धु कहाँ है?
मैं स्वदेश को उसका परिचय।
देने को अतिही उत्सुक हूँ
वर्णन कर उपकार-समुच्चय॥
प्राणनाथ की सुमधुर वाणी
सुनकर सरला गद्गद होकर।
सकुचाकर धीरे से बोली
यही है वह हे प्राणेश्वर !

[३८]

लो यह राज्य प्रजा की थाती
तुम्हें सौंपता हूँ हे प्रियवर!
मुझे तुम्हारी प्रजा कहाने
का गौरव हो प्राप्त निरन्तर॥
राजा का यह त्याग देखकर
प्रजा हो गई हर्ष-विमोहित।
धन्य धन्य ध्वनि से जय जय से
बार बार नभ हुआ निनादित॥

[३९]

उसी समय पद-वन्दन कर के
सुमना सम्मुख हुई उपस्थित।
विस्मित हुआ वसन्त यकायक
देख सामने सुरस चिर-वाञ्छित॥
किन्तु व्यक्त वह कर न सका कुछ
वाणी से निज हृद मनोगत।
उज्ज्वल रेखाओं ने आँखों में
आकर किया प्रिया का स्वागत॥

[९०]

सावधान होकर वसन्त फिर
बोला सब को सम्बोधन कर।
जिसने किया कर्म है पथ में
मुझे धर्म-पालन को तत्पर॥
कई बार दुर्दम्य शत्रु के
दल में मेरे प्राण बचाकर।
जिसने मुझे किया है उपकृत
रहकर रण में साथ निरन्तर॥

[९१]

पर मेरा प्रिय बन्धु कहाँ है!
मैं स्वदेश को उसका परिचय।
देने को अतिही उत्सुक हूँ
वर्णन कर उपकार-समुच्चय॥
प्राणनाथ की सुमधुर वाणी
सुनकर सुमना गद्गद होकर।
मुस्काकर धीरे से बोली
मैं ही हूँ वह हे प्राणेश्वर।

[३८]

लो यह राज्य प्रजा की थाती
तुम्हें सौंपता हूँ हे प्रियवर!
मुझे तुम्हारी प्रजा कहाने
का गौरव हो प्राप्त निरन्तर॥
राजा का यह त्याग देखकर
प्रजा हो गई हर्ष-विमोहित।
धन्य धन्य ध्वनि से जय जय से
बार बार नभ हुआ निनादित॥

[३९]

उसी समय पद-वन्दन कर के
सुमना सम्मुख हुई उपस्थित।
विस्मित हुआ वसन्त यकायक
देख सामने सुख चिर-वाञ्छित॥
किन्तु व्यक्त वह कर न सका कुछ
वाणी से निज हृद मनोगत।
उष्ण रेखाओं ने आँखों में
आकर किया प्रिया का स्वागत॥

Printed by K. P. Dar at the Allahabad Law Journal Press, Allahabad and Published by Pandit R. N. Tripathi, Hindi-Mandir, Prayag

Printed by K. P. Dar at the Allahabad Law Journal Press, Allahabad and Published by Pandit R. N. Tripathi, Hindi-Mandir, Prayag